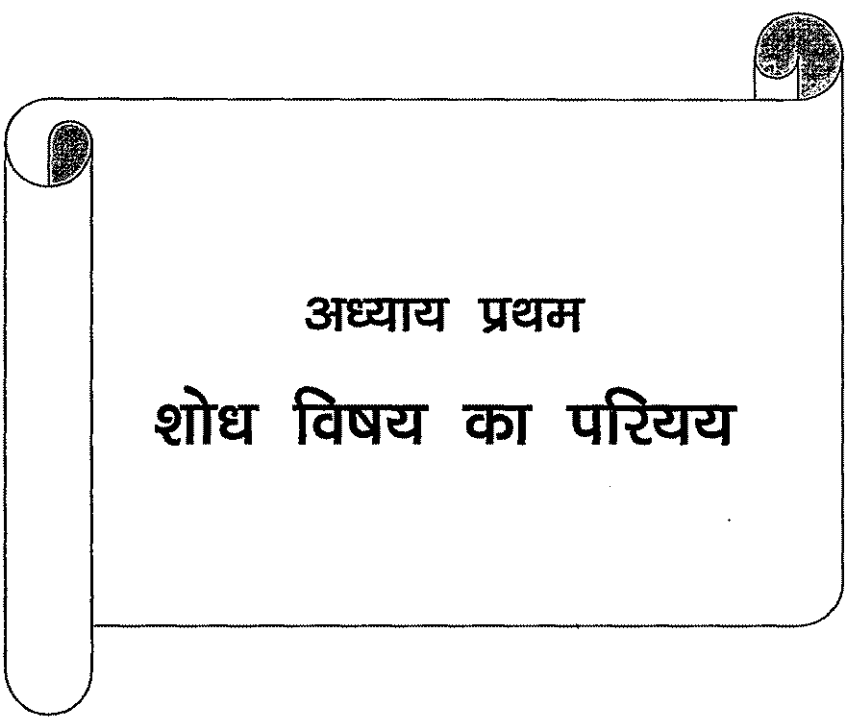

अध्याय प्रथम

शोध विषय का परियय

अध्याय प्रथम

शोध विषय का परिचय

1.1 प्रस्तावना

"किसी भी समाज में दी जाने वाली शिक्षा समय–समय पर उसी प्रकार बदलती है जिस प्रकार समाज बदलता है।" प्रोफेसर ओटावे

शिक्षा तथा समाज का अटूट संबंध है। समाज में संस्कृति तथा जीवन विधि का जो स्वरूप होता है। उसी के अनुरूप उस समाज की आवश्यकताएँ होती हैं। उन्हीं आवश्कताओं को ध्यान में रखकर उस समाज में शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। समाज की आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ–साथ शिक्षा का स्वरूप भी परिवर्तित करने की आवश्यकता होती है। जिसमें समाजीकरण की भूमिका विद्यार्थियों के समाजिक विकास तथा व्यक्तिगत पहचान का माध्यम शिक्षा माना जाता है। जिस रूप में बालकों को शिक्षा दी जायेगी। समाज उसी रूप या आकार को अपनाते जायेगा। इसलिए शोध में सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि का शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव के मध्य संबंधों का अध्ययन किया गया है।

व्यक्ति जन्म के समय न तो सामाजिक होता है न ही आसामाजिक उसका लक्ष्य केवल अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। जन्म के समय मानव शिशु मात्र एक प्राणीशास्त्र अथवा जैवकीय इकाई के रूप में होता है उस समय वह रक्त, मांस एवं हड्डीयों से बना एक जीवित पुतला मात्र होता है। इसमें कोई भी सामाजिक गुण नहीं होता। समाज के रीति–रिवाजों, प्रथाओं, मूल्यों एवं संस्कृति से वह अनभिज्ञ होता है, किन्तु वह कुछ शारीरिक क्षमताओं के साथ जन्म लेता है इन क्षमताओं के कारण वह बहुत कुछ सीख लेता है। समाज का क्रियाशील सदस्य बन जाता है तथा संस्कृति को ग्रहण करता है। सीखने की यह क्षमता व्यक्ति में समाज में रहकर तथा समाज के अन्य लोगों के संपर्क में आने पर ही विकसित होती

है। समाजिक संपर्क के कारण ही व्यक्ति एक प्राणीशास्त्री प्राणी से सामाजिक प्राणी बन जाता है। समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा मानव पशु स्वर से ऊँचा उठकर मानव की संज्ञा प्राप्त करता है। जैसे–जैसे आयु बढ़ती जाती है उसे यह स्पष्ट होने लगता है कि वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी दूसरों पर निर्भर है। अतः वह अपने बाह्य परिवेश के साथ समायोजन करना सीखता है। सामाजिक संसार में कदम रखने पर सबसे पहले उसका परिचय माता–पिता से होता है। विशेष रूप से माँ से धीरे–धीरे उसका सामाजिक दायरा बढ़ता जाता है। अन्य व्यक्ति के साथ अन्तः क्रिया के दौरान वह समाज में मान्य अनेक विश्वासों, विचारों, आपेक्षाओं एवं मूल्यों को सीखता है। इस प्रकार एक निरीह, असहाय प्राणी एक सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित होने लगता है।

बोगार्डस के अनुसार (1984) : "समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोग, मानव कल्याण के लिए एक दूसरे पर निर्भर होकर व्यवहार करना सीखते है और ऐसा करने में सामाजिक आत्म नियंत्रण, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा संतुलित व्यक्तित्व का अनुभव करते है।"

किम्बाल यंग के अनुसार (1974) : "समाजीकरण का अर्थ यह है कि व्यक्ति जन–रीतियों, रूढ़ियों, कानूनों, अपनी संस्कृति की अन्य कुशलताओं और आवश्यक आदतों को सीखता है जो समाज का क्रियाशील सदस्य बनने में सहायता देती है। वह अपने आप को परिवार, पड़ोस और वर्ग के अनुकूल बनाना सीखता है। सारांश में सामाजीकरण की संपूर्ण प्रक्रिया अन्तः क्रिया या सामाजिक कार्य के अंतर्गत आती है।"

ड्रेवर के अनुसार (1967) : "सामाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक आदर्शो को स्वीकार करके अपने सामाजिक वातावरण के साथ अनुकूलन करता है और इस प्रकार वह उस समाज का मान्य, सहयोगी और कुशल सदस्य बनता है।"

समाजीकरण तथा सामाजिक अधिगम में घनिष्ठ संबंध है, सामाजीकरण में सामाजिक अधिगम से अधिक सहायता मिलती है। सामाजिक अधिगम की तुलना सामाजीकरण का दायरा काफी विस्तृत है। सामाजीकरण का मुख्य

उद्देश्य अंतःक्रिया द्वारा बालक या व्यक्ति के व्यवहार को इस प्रकार परिमार्जित करना होता है कि वह सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुरूप हो जायेगा। इसके लिए व्यक्ति पर समूह का या समाज का दबाव भी पड़ता है। जबकि सामाजिक अधिगम में ऐसा सदैव नहीं होता है। सामाजीकरण केवल कौशल अर्जन, अनुकरण, तादात्मिकरण या भूमिका अधिगम तक सीमित नहीं है। अपितु इसके द्वारा अन्य विविध प्रकार के सामाजिक व्यवहार भी सीखे जाते है। सामाजीकरण हेतु उचित परिवेश तथा अवसर न मिलने पर व्यक्ति ने अवांछित व्यवहारों का प्रभुत्व बढ़ता जाता है, जैसे झूठ बोलना, चोरी करना, झगड़ा करना, हिंसा तथा आक्रामकता इत्यादि।

अर्थात् शिक्षा मानव की समस्त स्वभाविक शक्तियों का पूर्ण प्रगतिशील विकास है। अतः शिक्षा अर्जन करने वाले सभी बालकों का सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि उनके शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव डालते है। किसी भी प्रकार के असामान्य व्यवहार या असामान्य व्यक्तित्व के विपरित होने के पीछे जो कारक सबसे अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाने का सामर्थ्य रखते है, उनकी पृष्ठ भूमि व्यक्ति विशेष सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश से जुड़ी हुई होती है। जैसेः-

- परिवार,
- आस-पड़ोस,
- सामाजिक परम्पराऐं तथा धार्मिक संस्थायें,
- जनसंचार माध्यम इत्यादि।

यहाँ बात संवेगात्मक रूप से अशांत व्यवहार को पैदा करना तथा फिर उसे पल्लवित और पोषित कर नासुर बना देने में भी पूरी तरह लागू होती है। हमारे सभी के सांस्कृतिक और सामाजिक परिवेश में जिसका दायरा माता-पिता और घर परिवार से शुरू होकर पास-पड़ोस, मोहल्ला, स्कूल, समुदाय या समाज विशेष तथा सभी तरह की सामाजिक एवं सांस्कृतिक संपर्क बनाने वाली संस्था तथा गतिविधियों तक फैला होता है। ऐसी बहुत सी घटनाऐं तथा परिस्थितियाँ विराजमान हो सकती है। जिनका मूलभूत, वर्तमान

या भविष्य हमें किसी न किसी रूप में चिन्ता, परेशानी, निराशा, अंतः द्वन्द्व, कुण्ठा, आत्मग्लानि और अन्य विविध ग्रंथियों एवं मनोविकारों का शिकार बनाने के लिए उत्तरदायी होता है।

1.1.1 शिक्षा आयोग की रिर्पोट के अनुसार (1948–49)

"शिक्षा को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन के शक्तिशाली साधन के रूप में प्रयोग किया जाता सकता है।" मानव को अपनी एक अपूर्व विशेषता के कारण अन्य वर्ग से भिन्न माना जाता है। वह विशेषता यह है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है जो सामाजिक परिवेश उसके लिए जल, वायु तथा भोजन की तरह ही एक आवश्यक वस्तु है। वह समाज में रहकर जीना चाहता है और सामाजिक बंधनों को बनाने तथा दूसरों के साथ समायोजन करने की चेष्ठा करता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि मानव शिशु में इस प्रकार के सामाजिक गुण और व्यवहारिक विशेषताएँ जन्मजात होती है। वृद्धि और विकास के अन्य पहलूओं की तरह सामाजिक गुण भी बच्चे में धीरे–धीरे पनपते है। इन गुणों के विकास की प्रक्रिया जो बच्चे के सामाजिक व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन लाने का कार्य सम्पन्न करती है। सामाजिक विकास अथवा सामाजिक परिवेश की प्रणाली के नाम से जानी जाती है। सामाजिक विकास या सामाजिक परिवेश मानव वृद्धि और विकास की संपूर्ण प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखते है यहाँ तक कि हम किसी को व्यक्ति कहकर तभी पुकारते है जब वह सामाजिक विकास या सामाजिक परिवेश की प्रक्रिया से होकर गुजर चुका है। संविधान का अनुच्छेद 46 प्रावधान करता है कि संघीय राज्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की आर्थिक और शैक्षिक विकास के लिए उत्तरदायी है।

1.1.2 माध्यमिक शिक्षा आयोग(1952–53) के अनुसार

"शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज में समाज के द्वारा और समाज के लिए होती है।"

"शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य व्यक्तियों को सामाजिक, राजनैतिक, औद्योगिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में नेतृत्व के उत्तरदायित्व को वहन करने में समर्थ बनाने हेतु उनमें नेतृत्व या संवेग गुण का विकास करना भी है।" अतः शिक्षा द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व पर सामाजिक परिवेश की समीक्षात्मक रूप से पड़ने वाले प्रभाव की कल्पना या अनुमान लगाना आवश्यक है। क्योंकि विद्यार्थियों का सामाजिक विकास करना शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य के साथ शिक्षा प्रणाली को मूलभूत सामाजिक, नैतिक और अध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर जोर देना चाहिए।

1.1.3 कोठरी कमीशन (1964–66) के अनुसार

कोठारी आयोग ने अनुभव किया था कि देश के आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में शिक्षा एक महत्वपूर्ण कारक है इसलिए इसे राष्ट्रीय महत्व का विकास माना जाना चाहिए। "आयोग ने अपनी जाँच में पाया कि तत्कालीन शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय एकता तथा सामाजिक कारण को कायम रखने में विफल रही है। अतः देश की प्रगति हेतु सामाजिक व राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता का एक अनुभव करते हुये कुछ सुझाव दिये है। जिससे सभी विद्यालयों में समानता तथा समाज सेवा की भावना को जागृत करना है।"

(1) गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा प्रदान करने हेतु एक समान स्कूल प्रणाली की स्थापना की जाये। जिसमें शिक्षा सबके लिए समान रूप से उपलब्ध हो और अच्छी शिक्षा आर्थिक आधार पर नहीं बल्कि योग्यता के आधार पर उपलब्ध हो।

(2) शिक्षा में नैतिक, चारित्रिक एवं अध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना करने वाली गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

(3) छात्रों को सामाजिक सेवा के कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

1.1.4 राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के अनुसार

शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक सुधार यह है कि इसको परिवर्तित करके व्यक्तियों के जीवन आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से इसका संबंध स्थापित करने का प्रयास किया जाये और इस प्रकार इसको सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तन का शक्तिशाली साधन बनाया जाये। जो राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु आवश्यक है।

शिक्षा एक सतत् प्रक्रिया होने के कारण निरंतर विकसित व भिन्नीकृत होती है, तथा इसका प्रसार क्षेत्र लगातार बढ़ता रहता है। प्रत्येक राष्ट्र अपनी विशिष्ट सामाजिक, सांस्कृतिक पहचान को स्पष्ट करने व कायम रखने समकालीन चुनौतियों का सामना करने व राष्ट्रीय जीवन के संवर्धन के लिये अपनी विशिष्ट शिक्षा प्रणाली विकसित करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भारतीय शिक्षा के इतिहास में 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एक महत्वपूर्ण कदम का प्रतीक था।

1.1.5 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (2005) के अनुसार

"शिक्षा की आदर्श प्रणाली से लोगों को यह जानने के लिये तत्पर बनाना चाहिए कि उनकी सामाजिक एवं संवेगात्मक बौद्धिक क्षमतायें क्या है? और उनका अधिकतम विकास किस प्रकार किया जा सकता है।"

अर्थात् आदर्श शिक्षा प्रणाली लोगों में सामाजिक तथा मानवीय मूल्य के प्रति जागरूकता विकसित करके उन्हें उत्तम जीवन यापन की कला सीखाती है। शिक्षा व्यवसाय उस समाज से अलग-थलग होकर काम नहीं करती जिसका वह एक भाग है। जातिगत आर्थिक तथा स्त्री-पुरूष संबंधों का पदानुक्रम, सांस्कृतिक विविधता और असमान विकास से जो भारतीय समाज की विशेषताएँ शिक्षा की प्राप्ति और स्कूलों में बच्चों की सहभागिता प्रभावित होती है। स्कूल में नामांकित होने वाले और स्कूल की पढ़ाई पूरी करने वाले बच्चों के अनुपात के मामले में विभिन्न सामाजिक व आर्थिक सामुदाय के

बीच जो गहरी विषमता देखी जाती है उसमें यह प्रतिबिम्बित होता है और इस तरह अवसर की सामानता और सामाजिक न्याय के संवेधानिक मूल्यों को धक्का पहुँचता है।

1.2 अध्ययन की आवश्यकता

मनुष्य के सामाजिक व्यवहार को समझने का प्रयत्न श्रृष्टि की रचना के ही समय प्रारंभ हुआ माना जाता है। आज के युग में तो व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को समझने, विश्लेषित करने तथा उसके निर्धारकों की पहचान करने का कार्य हर देश के समाज मनोवैज्ञानिकों एवं इसमें रूचि रखने वाले अन्य विद्वानों, शोधकर्ताओं और प्रशासन से जुड़े लोगों द्वारा व्यापक रूप में किया जा रहा है। प्राचीन और आधुनिक दृष्टिकोणों में मौलिक अंतर यह है कि प्राचीन दृष्टिकोण दार्शनिक विचारों पर आधारित था और आधुनिक दृष्टिकोण वैज्ञानिक अवधारणाओं पर आधारित है।

प्रस्तुत शोध मुख्यतः तीन चरों के मध्य संबंधों जिसमें सामाजिक परिवेश, संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि को चुना है। क्योंकि यहाँ शोध एक से अधिक चरों से मिलकर बना है, परन्तु विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि बढाने के लिये क्या सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि आवश्यक होता है या नहीं यह जानना इस शोध का मुख्य उद्देश्य है। शोधार्थी को जानने की यह जिज्ञासा है कि शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में बालक-बालिकाओं के सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि से उनकी शैक्षिक उपलब्धि को किस प्रकार प्रभावित करके संबंध स्थापित करते है। विद्यार्थी विद्यालय में पाठ्यक्रम एवं विद्यालय गतिविधियाँ सहपाठियों के साथ किस प्रकार समायोजित होते है जिससे उनकी शैक्षिक उपलब्धि बड़ती है या कम होती है अनेक बालक विद्यालय में समायोजित नहीं हो पातें, इससे उन विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है। यह जानने का प्रयास इस शोध अध्ययन में किया जायेगा।

1.3 अध्ययन का औचित्य

प्रस्तुत पूर्व में किये गये शोधों में सामाजिक परिवेश से संबंधित शोध कम मात्रा में प्राप्त होने के कारण शोधार्थियों को सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि रूप से संबंधित शोध करने की जिज्ञासा है, शोधार्थी को आशा है, कि इस शोध द्वारा जो निष्कर्ष प्राप्त होंगे, उससे विद्यार्थियों के सामाजिक परिवेश के प्रभाव को आसानी से देखा जा सकेगा। यह जानकर हमें आने वाले समय में सामाजिक एवं संवेगात्मक समायोजन में शैक्षिक उपलब्धि को जानने में मद्द मिलेगी। इस शोध सर्वेक्षण के बाद प्रशासन को यह जानकारी प्राप्त होगी की विद्यालय में किस प्रकार की क्रियाऐं होने से विद्यार्थी में सामाजिक एवं संवेगात्मक बुद्धि अधिक होकर शैक्षिक उपलब्धि को प्राप्त किया जा सकता है। शिक्षकों को बालकों के व्यवहार एवं सामाजिक परिवेश द्वारा किस प्रकार की शिक्षा दे सकते है, यह जानकारी प्राप्त हो सकती है, इस शोध द्वारा विद्यार्थियों के सामाजिक परिवेश से संबंधित समस्याओं के समाधान हेतु काम आने वाली जानकारियाँ प्राप्त हो सकती है।

1.4 समस्या कथन

"कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश, संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के संबंधों का अध्ययन।"

1.5 अध्ययन में प्रयुक्त चरों की परिभाषा

1.5.1 सामाजिक परिवेश

फ्रीमेन एवं शौवल के अनुसार "सामाजिक परिवेश सीखने की वह प्रक्रिया है जो समूह के स्तर, परम्परा तथा रीति-रिवाजों के अनुकूल तथा अपने आप को डालने तथा एकता, मेलजोल और पारस्परिक सहयोग की भावना भरने में सहायक होती है।"

बालक प्रारंभ में एक असामाजिक प्राणी होता है, उसमें उचित सामाजिक गुणों का विकास कर समाज के मूल्यों एवं मान्यताओं के अनुसार व्यवहार करना, सीखना सामाजिक परिवेश के अंतर्गत आता है। व्यक्ति को जितना अपने आप से संतुष्ट तथा समायोजित होने की आवश्यकता होती है। उतनी ही अपने सामाजिक परिवेश से जुड़ी हुई बातों तथा व्यक्तियों के साथ उचित तालमेल बनाये रखकर समायोजित रहने की होती है। उसे अपने परिवेश तथा उसमे उपलब्ध परिस्थितियों में भी संतुष्ट अनुभव करना चाहिए। तभी वह ठीक तरह से समायोजित रह सकता है। सामाजिक परिवेश का दायरा उसके घर परिवार से शुरू होकर विश्व बंधुत्व की सीमा को छूता है। मुख्य रूप से एक व्यक्ति से सामाजिक समायोजन में निम्न पहलूओं को शामिल किया जा सकता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। जो भारतीय सामाजिक विचारों का आधार मनुष्य और उसकी अमर आत्मा, मानव धर्म और मानव सेवा, राष्ट्र के उत्थान की आवश्यकता, भारत और विश्व एक दूसरे के पूरक, अध्यात्म और विज्ञान तथा पूर्व और पश्चिम में समन्वय जैसे महान बिन्दु है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति विशेषकर हिन्दुत्व की दृष्टि से जो श्रेष्ठ तत्व है, उनका मूल्य शास्वत है और इन जीवन मूल्यों को अपनाकर ही विश्व में भारत का स्थान ऊँचा है। दूसरे देशों के लोग ही भारत के नैतिक और अध्यात्मिक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त कर भारत से प्रेम करने लगे है।

सामाजीकरण की विशेषताऐं

1. **सीखने की प्रक्रियाः–** सामाजीकरण सीखने की वह प्रक्रिया है जिनको सभी प्रकार की बातें सीखना सामाजीकरण नहीं है। वरन उन व्यवहारों को जो सामाजिक प्रतिमानों, मूल्यों एवं समाज द्वारा स्वीकृत है उन्हें सीखना ही एक सामाजीकरण है।
2. **अजन्म प्रक्रियाः–** सामाजीकरण की प्रक्रिया जन्म से लेकर मृत्यु तक चलने वाली है। बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक व्यक्ति अनेक

परिस्थितियाँ अथवा पद धारण करता है तथा उन्हीं के अनुसार अपनी भूमिकाओं का निर्वाह करना सीखता है।

3. **समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बनने की प्रक्रियाः–** सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा बालक समाज का प्रकार्यात्मक सदस्य बन जाता है अर्थात् वह सामाजिक कार्यो में भाग लेने योग्य बन जाता है वह यह जान जाता है कि उसे किस परिस्थिति में किस पद पर रहकर क्या कार्य करना है।

4. **समय व स्थान सापेक्षः–** सामाजीकरण सापेक्षिक क्रिया है प्रत्येक स्थान एवं समय इसका रूप बदला हुआ हो सकता है प्रत्येक स्थान तथा समाज के आदर्शो एवं मूल्यों अर्थात् संस्कृति में भिन्नता पायी जाती है। इसी प्रकार समय के साथ साथ एक समाज के आदर्श एवं मूल्य में भी परिवर्तन होते रहते है।

5. **संस्कृति को आत्मसात करने की प्रक्रियाः–** सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा बालक सांस्कृतिक मूल्यों, मानकों तथा समाज स्वीकृत व्यवहारों को सीखता है तथा संस्कृति के भौतिक एवं अभौतिक तत्वों को आत्मसात करता है धीरे–धीरे यहाँ संस्कृति उसके व्यक्तित्व का अंग बन जाती है।

6. **आत्म का विकासः–** सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा बालक ने आत्म का विकास होता है उसमें अपने प्रति जागरूकता उत्पन्न होती है तथा वह जानने लगता है कि दूसरे व्यक्ति उसके बारे में क्या सोचते है।

7. **संस्कृति हस्तांतरणः–** सामाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा संस्कृति जीवित रहती है तथा अपनी निरंतरता बनाये रखती है सामाजीकरण की प्रक्रिया के द्वारा पुरानी पीढ़ी संस्कृति का हस्तांतरण करती रहती है।

सामाजीकरण की विशेषता के आधार पर बालकों का शैक्षिक विकास या उपलब्धि समाज की आवश्यकता पर निर्भर करता है। जिसमें व्यक्ति जीना चाहता है शिक्षा का विकास को भी बालकों के घर–परिवार , आस–पड़ोस, परम्परायें तथा धार्मिक संस्थायें प्रभावित करती है, जिनसे शैक्षिक उपलब्धि का स्तर भी प्रभावित होता है। इस शोध अध्ययन की आवश्यकता विद्यालय में अध्ययनरत् विद्यार्थियों की सामाजिक परिवेश को

प्रभावित करने वाले सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक तथ्यों का अध्ययन किया गया है। जिसके आधार पर सामाजीकरण की भूमिका विद्यार्थी के शैक्षिक विकास में कितने प्रतिशत पायी जाती है तथा सामाजिक परिवेश का संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सहसंबंध की जानकारी प्राप्त करना इस शोध की आवधारणा है।

सामाजीकरण के प्रमुख घटक

1.घर–परिवार

बालक के सामाजीकरण में परिवार सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है, घर का परिवेश और आपसी पारिवारिक संबंध बच्चों के सामाजिक विकास पर गहरा प्रभाव डालते है, बच्चा अपने माता–पिता तथा घर परिवार के अन्य सदस्यों से सामाजिकता का प्रारंभिक पाठ पढ़ता है। जाने–अनजाने वह उनके व्यवहार का अनुकरण करता है और इस तरह अच्छे या बुरे सामाजिक गुणों और अदतों को ग्रहण करता है। जो उसके साथ कभी–कभी जीवन पर्यन्त चलते रहते है। घर में बच्चों की संख्या, परिवार के आपसी संबंध, माता–पिता और परिवार के सदस्यों के बच्चों के प्रति किया जाने वाला व्यवहार, परिवार की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति, पारिवारिक मूल्य, परम्पराएँ, और मान्यताऐं आदि सभी बच्चों के विकास पर प्रभाव डालते है। ऐसे परिवार में जहाँ बच्चे को स्वस्थ्य सामाजिक परिवेश मिलता है और जहाँ बालक की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है सामाजिक रुप से स्वस्थ्य एवं संतुलित बालकों को जन्म मिलता है, लेकिन ऐसे घरों में जहाँ पारिवारिक संबंधों में कटुरता और खिचाव पाया जाता है तथा परिवार के बड़े लोगों में सामाजिक कुसंस्कार और बुराईयाँ व्याप्त होती है वहाँ बालकों में भी अवांछित सामाजिक बुराईयाँ और दोष घर कर जाते है। इसलिए बालकों के उचित सामाजिक विकास के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि स्वस्थ्य एवं सुन्दर पारिवारिक परिवेश प्रदान करने के लिये उनके माता–पिता का अधिक सहयोग प्राप्त किया जाये।

2. आस-पड़ोस

जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है वह घर के आँगन को लांगकर पड़ोस और जिस समुदाय में वह पैदा हुआ है उसके संपर्क में आता है। पड़ोसियों की रूचियों, आदतों और गुण तथा अवगुण का बालक के सामाजिक जीवन पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से गहरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समुदाय और समाज में अपने रहन-सहन, खाने-पीने, बोलने-चालने और अन्य सांस्कृतिक क्रियाकलापों को करने का एक विशेष ढ़ग होता है। जिसको बच्चा अनायास ही ग्रहण कर लेता है और वह उसी तरह से व्यवहार करने लगता है। इस प्रकार से बालकों के सामाजिक व्यवहार को दिशा प्रदान करने में पड़ोस, समुदाय तथा समाज एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

3. सामाजिक परम्पराऐं एवं धार्मिक संस्थाएं

विभिन्न धार्मिक संस्थायें जैसे मंदिर, मस्जिद, गिरजाघर और सामाजिक क्लब इत्यादि बालकों के सामाजिक विकास को प्रभावित करते है। बालक के माता-पिता जिन सामाजिक परम्पराऐं और धार्मिक संस्थाओं से जुड़े रहते है, उनके बच्चों की शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है। ये संस्थायें जिन नैतिक और सामाजिक मूल्यों पर बल देती है आगे चलकर बालक इन्हें ग्रहण करता है।

4. जनसंचार माध्यम और मनोरंजन के साधन

समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं, पुस्तको, रेडियों, सिनेमा, टेलीविजन आदि सूचना और मनोरंजन प्रदान करने वाले साधनों का बालक के सामाजिक विकास के दृष्टिकोण से काफी महत्व है। सूचना देने वाले साधन अपने पाठक अथवा श्रोताओं को सामाजिक संरचना तथा मूल्यों और मान्यताओं में होने वाले परिवर्तनों से परिचित कराते रहते है। सिनेमा के पर्दे पर जो कुछ नायक और नायिका करते है उनका अनुकरण नई पीढ़ि बहुत ही शीघ्रता से कर लेती है। इस तरह इस साधनों द्वारा जीवन मूल्यों, आदर्शो, रहन-सहन, खान-पान तथा बोलचाल के तरीकों एवं सामाजिक व्यवहार के अन्य पहलूओं में महत्वपूर्ण परिवर्तिन लाने का कार्य निरंतर चलता रहता है।

1.5.2 संवेगात्मक बुद्धि

संवेगात्मक बुद्धि पद का प्रयोग 1990 में सबसे पहले दो अमेरिकन **प्रोफेसरों डॉ. जॉन मेयर तथा डॉ. पीटर सोलोवे** द्वारा एक ऐसा वैज्ञानिक प्रमाप तैयार करने हेतु किया गया था जिससे लोगों की संवेगात्मक क्षेत्र में विद्यमान व्यक्तिक योग्यताओं में विभेदीकरण किया जा सके। परन्तु जिस रूप में आज संवेगात्मक पद की सर्वत्र चर्चा की जाती है उसे इस तरह से लोकप्रिय बनाने का श्रेय केवल मात्र एक **अमेरिकन मनोवैज्ञानिक डेनियल गोलमैन** को ही जाता है। उसी ने अपनी 1995 में एक पुस्तक **"संवेगात्मक बुद्धिः बुद्धिलब्धि से अधिक महत्व क्यों"** के माध्यम से इसे विशेष चर्चा का विषय बनाया है।

जॉनडी मेयर तथा पीटर सोलोवे द्वारा 1997 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **"संवेगात्मक विकास एवं संवेगात्मक बुद्धि में संवेगात्मक बुद्धि पद"** को निम्न प्रकार परिभाषित किया है। "संवेगात्मक बुद्धि को एक ऐसी क्षमता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसे चार विभिन्न रूपों में संवेगों को उचित दिशा देने में मद्द मिले, जैसे–संवेग विशेष का प्रत्यक्षीकरण करना, उसका अपनी विचार प्रकिया में समन्वय करना, उसे समझना तथा उसका प्रबंधन करना।" एक बालक अपने जन्म के समय कुछ न कुछ बुद्धि लेकर ही इस धरती पर आता है जिसे आगे चलकर अनुभव और परिपक्वन की प्रकिया द्वारा अपेक्षित ऊँचाइयों पर पहुँचाने के प्रयत्न किये जाते रहते है। संवेगात्मक बुद्धि से तात्पर्य व्यक्ति विशेष की उस समग्र क्षमता (सामान्य बुद्धि से संबंधित होते हुये भी अपने आप में स्वतंत्र) से है जो उसे उसकी विचार प्रकिया का उपयोग करते हुये अपने तथा दूसरों के संवेगों को जानने, समझने तथा उनकी ऐसी उचित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति कराने में किस प्रकार मद्द करे की वह ऐसी वांछित व्यवहार अनुक्रियाएँ कर सके जिससे उनको दूसरों के साथ सामांजस्य स्थापित करते हुये अपना समुचित हित करने हेतु अधिक से अधिक अच्छे अवसर प्राप्त हो सके।

संवेगात्मक बुद्धि की उपयोगिता एवं महत्व

संवेगात्मक बुद्धि में बालकों की सफलता तथा उनकी मानसिक योग्यता एवं क्षमताओं का अध्ययन किया जाता है इसलिए सामान्य बुद्धि की मात्रा यानी आई क्यू (I.Q.) को एक ऐसा आधार या पैमाना माना जाता था जिससे यह भविष्यवाणी की जा सके की व्यक्ति विशेष किसी कार्य विशेष के संपादन में किस सीमा तक सफल होगा इन प्रयासों को विशेष बल संवेगात्मक बुद्धि नामक आवधारणा के जन्म लेने के कारण ही मिला है। विशेषकर **अमेरिकन मनोवैज्ञानिक डॉ. डेनियन गोलमैन की बहु चर्चित पुस्तकों "संवेगात्मक बुद्धि–बुद्धि लब्धि से अधिक महत्व क्यों।"** ने संवेगात्मक बुद्धि की उपयोगिता एवं महत्व को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से जनमानस के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। संवेगात्मक बुद्धि की उपयोगिता एवं महत्व के बारे में व्यक्त गोलमैन के इन विचारों को संक्षेप में निम्न प्रकार लिपिबद्ध किया जा सकता है।

1. कोई व्यक्ति जीवन में कितना सफल होगा इसकी भविष्यवाणी करने हेतु संवेगात्मक लब्धि (E.Q.), बुद्धि लब्धि (I.Q.) की तरह ही और बहुत सी परिस्थितियों में उससे अधिक सामर्थवान सिद्ध हो सकती है, बुद्धि लब्धि (I.Q.) का तो जीवन में मिलने वाली सफलताओं में केवल 20 प्रतिशत ही योगदान रहता है शेष 80 प्रतिशत योगदान का श्रेय उसकी संवेगात्मक बुद्धि प्रारंभ तथा उसके सामाजिक स्तर आदि को जाता है।
2. व्यक्ति की बुद्धि लब्धि (I.Q.) नहीं बल्कि उसकी संवेगात्मक लब्धि (E.Q.) को ही पूरी तरह से उसके भविष्य के बारे में उद्घोषणा करने वाला सही प्रमाप माना जा सकता है। जिस व्यक्ति में यथेष्ठ संवेगात्मक बुद्धि होती है वह जीवन में किसी भी क्षेत्र में इच्छित सफलता अर्जित करता है।
3. संवेगात्मक बुद्धि के लिए सामान्य बुद्धि की तुलना में एक बात यहाँ भी अधिक महत्वपूर्ण है कि इससे संवेगात्मक क्षमताओं में वृद्धि कर वांछित रूप से विकसित करने के प्रयास किये जा सकते है और फिर इस

विकास के माध्यम से व्यक्तियों को अपना जीवन सुखमय और शांतिप्रद बनाने में सहायता की जा सकती है।

4. संवेगात्मक बुद्धि की आवधारणा को मात्र इसलिए नहीं सराहा जा सकता की यह एक नवीनतम आवधारणा है बल्कि इसलिये कि यही एक ऐसी अवधारणा है जो बालको और हम सभी के सामने आदर्श रखती है, कि किस प्रकार हम अपने आपको सामर्थ बनाये तथा सुखी रहे।
5. बुद्धि परीक्षणों तथा अच्छी तरह से निर्मित मानक उपलब्धि परीक्षणों के द्वारा भी जीवन क्षेत्रों में सफलता के संदर्भ में उचित भविष्यवाणी नहीं की जा सकती, परन्तु संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण परिणाम यह करने का सामर्थ रखते है। यहाँ तक की विद्यार्थी जीवन में मिलने वाली सफलता के पीछे बहुत कुछ सीमा तक विद्यार्थी विशेष की संवेगात्मक बुद्धि का ही हाथ रहता है।
6. कामकाज की दुनिया में भी सामान्य बुद्धि और यहाँ तक की कार्य विशेष से संबंधित निपुणता तथा दक्षताओं की तुलना में वांछित सफलता प्राप्त करने में भी संवेगात्मक बुद्धि का ही अधिक योगदान पाया जाता है। एक व्यक्ति चाहे जितनी भी अपने कार्य में होशियार या दक्ष हो उसे प्रायः इसलिये असफल होता हुआ पाया जाता है क्योंकि उसमें अपने आप से तथा दूसरें के साथ भलीभाँति सामांजस्य स्थापित करने के लिये आवश्यक संवेगात्मक बुद्धि नहीं पायी जाती है।
7. किसी भी संवेगात्मक बुद्धि उसे जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में वांछित सफलता प्राप्त करने के कार्य में अपने विभिन्न अवयवों एवं कारकों के माध्यम से पर्याप्त मद्द कर सकी है। अपने तथा दूसरों के संवेगों के प्रति सही जानकारी एवं सजगता, संवेगों का उचित प्रबंधन और संबंधों को ठीक प्रकार बनाये रखने जैसे कार्यो में संवेगात्मक बुद्धि विशेष रूप से सहायक सिद्ध होती है। जीवन में अगर कोई बात कहीं भी किसी की सफलता में अधिक से अधिक सहायक हो सकती है वह उसमें दूसरों के साथ अच्छे संबंध बनाये रखने की योग्यता ही है और इस

बात में उसकी संवेगात्मक बुद्धि ही उसकी सबसे अधिक सहयोगी सिद्ध होती है।

संवेगात्मक बुद्धि के बारे में डेनियल गोलमैन द्वारा प्रतिपादित उपरोक्त विचारों ने एक तरह से हमारे जीवन के विविध क्षेत्रों में संवेगात्मक बुद्धि की आवश्यकता एवं उपयोग को लेकर एक क्रांति सी मचा दी है। आज घर, विद्यालय, चिकित्सालय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मंच, परामर्श एवं निर्देशन सेवायें, औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठान, प्रबंधन क्षेत्र आदि कोई भी ऐसा स्थान नही जहाँ कामकाज की दुनिया में संवेगात्मक बुद्धि के महत्व एवं उपयोगिता को अपनाया ना गया हो। जिससे छात्रों की शैक्षिक समास्या के कारणो की जाँच की जाती है। संवेगात्मक बुद्धि बालक की शारीरिक, शैक्षिक तथा मानसिक इत्यादि प्रकार के विकास का कारण माना जाता है जिससे बालकों को अपनी शैक्षिक आवश्यकता तथा शिक्षा जगत से अधिगम प्राप्ति की आशा होती है जिसमें मानसिक तर्क का ज्ञान आवश्यक रूप से होता है।

सामाजिक परिवेश और संवेगात्मक बुद्धि का भी आपस में गहरा संबंध है। बच्चा जितना अधिक सामाजिक होगा संवेगात्मक ज्ञान रूप में वह उतना ही परिपक्व और संयमशील बनेगा। सामाजिक रूप से अविकसित अथवा अपेक्षित बालकों को अपने संवेगात्मक समायोजन में बहुत कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। सामाजिकरण की प्रक्रिया में बच्चों का ठीक-ठीक संवेगात्मक विकास और संवेगात्मक व्यवहार अपेक्षित है। उनका पालन-पोषण बालकों के उचित सामाजिक गुणों के विकास पर भी निर्भर करता है और वहाँ इस दृष्टि से सामाजिक परिवेश, संवेगात्मक बुद्धि को प्रभावित करने में पूरी-पूरी भूमिका निभाता है।

1.5.3 शैक्षिक उपलब्धि

छात्र अथवा व्यक्ति अपने जीवन में अनेक प्रकार का ज्ञान तथा कौशल प्राप्त करता है। इस ज्ञान तथा कौशल में कितनी दक्षता व्यक्ति ने प्राप्त की है, इसका पता उस ज्ञान तथा कौशल के उपलब्धि परीक्षण से चलता है।

विद्यालय की विभिन्न कक्षाओं में अनेक प्रकार के छात्र शिक्षा ग्रहण करने के लिये आते है। समान मानसिक योग्यताओं से सम्पन्न न होने के कारण वे समय की एक ही अवधि में विभिन्न विषयों और कुशलताओं में विभिन्न सीमाओं तक प्रगति करते है। उनकी इसी प्रगति प्राप्ति या उपलब्धि का मापन या मूल्यांकन करने के लिये उपलब्धि परीक्षाओं की व्यवस्था की गई है। अतः हम कह सकते है कि **"उपलब्धि परीक्षा वे परीक्षाऐं है जिनकी सहायता से विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों और सिखाये जाने वाले कुशलताओं में छात्रों की सफलता या उपलब्धि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।"**

(1) थार्नडाइक व हैगन के अनुसारः– "जब हम उपलब्धि परीक्षण का प्रयोग करते है, तब हम इस बात का निश्चय करना चाहते है कि एक विशिष्ट प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त व्यक्ति ने क्या सीखा है।"

(2) गैरेट के अनुसारः– "उपलब्धि परीक्षण का उपयोग छात्रों के सामान्य शैक्षिक स्तर या स्थिति और किसी विशेष विषय में उनके ज्ञान का निश्चय करने के लिये किया जाता है।"

उपलब्धि परीक्षण के अंतर्गत यह मापन किया जाता है कि छात्र ने पढ़े हुये विषय में कितना ज्ञान अर्जन किया है इन परीक्षणों का विशेष रूप से निदानात्मक उपयोग है। किसी व्यक्ति की किसी विशिष्ठ क्षेत्र में प्राप्त सफलताओं या उपलब्धियों को मापने के लिये उपलब्धि परीक्षाओं या परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। स्कूलों में विद्यार्थियों की विभिन्न विषयों में प्राप्त शिक्षा की जॉंच करने के लिये उपलब्धि परीक्षाओं का उपयोग किया जाता है। इन परीक्षाओं से इस बात का पता चलता है कि विद्यार्थी ने अपने शिक्षण अनुभव से क्या प्राप्त किया? अतः ये परीक्षाएँ भूतकाल की क्रियाओं का ही लेखाजोखा करती है। विद्यार्थी की वर्तमान योग्यता का परीक्षण करके इस बात का पता लगाया जाता है कि वह अब तक क्या सीखता या प्राप्त करता

रहा इन विशेषताओं के आधार पर यदि हम उपलब्धि परीक्षा की परिभाषा देने का प्रयास करें तो इस प्रकार दी जा सकती है।

"उपलब्धि परीक्षा या परीक्षण एक ऐसा मापन–साधन है जिसकी सहायता से संबंधित व्यक्ति की वर्तमान योग्यता का मापन करके इस बात का निश्चित किया जा सकता है कि उसने कुछ समय के शिक्षण के पश्चात् किसी विशिष्ट विषय या विषयों के समूह में कितनी और किस तरह की योग्यता प्राप्त की।"

शैक्षिक उपलब्धि के उद्देश्य

1. शिक्षक के शिक्षण तथा अध्ययन की सफलता का अनुमान लगाना।
2. बालकों की उपलब्धि से सामान्य स्तर को निर्धारित करना।
3. बालकों की विभिन्न विषयों और क्रियाओं में वास्तविक स्थिति को ज्ञात करना।
4. बालकों को पढ़ाये जाने वाले विद्यालय–विषयों में उनके ज्ञान की सीमा का मापन करना।
5. बालकों की पढ़ने–लिखने के सामान कुशलताओं में गति और श्रेष्ठता का निश्चय करना।
6. बालकों को ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में दिये गए प्रशिक्षण के परिणाम का मूल्यांकन करना।
7. पाठ्यक्रम के लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर बालकों की प्रगति की जानकारी प्राप्त करना।
8. बालकों की अधिगम संबंधी कठिनाईयों को ज्ञात करना और उनका निवारण करने के लिये पाठ्यक्रमों में आवश्यक परिवर्तन करना।

उपलब्धि परीक्षण सर्वेक्षण केवल कुछ आँकड़ों को एकत्रित करने के लिये नहीं किये जाते बल्कि शिक्षा प्रशासकों व शिक्षकों को आवश्यकता सूचना प्रदान करने के लिये किये जाते है। जिससे निर्णय लेकर शिक्षा पद्धति में सुधार लाया जा सके। अमेरिका में ऐसे अनेक सर्वेक्षण बहुत बड़े क्षेत्रों के लिये किये गये है। भारत में ऐसे व्यापक अध्ययन का पहला चरण राष्ट्रीय परिषद्,

शिक्षा अनुसंधान व प्रशिक्षण नई दिल्ली ने 1968 में कुलकर्णी ने उठाया था। यहाँ सर्वेक्षण केवल गणित की उपलब्धि तक सीमित थे और शिक्षा के तीन स्तरों–प्रारंभिक, माध्यमिक व हाई स्कूल स्तर पर बिहार व तमिलनाडू को छोड़कर शेष सभी राज्यों में किये गये थे। अन्य कई संगठन जैसे विश्वविद्यालय शिक्षा विभाग, राजकीय शिक्षा संस्थान आदि भी उपलब्धि परीक्षण सर्वेक्षणों के लिये उपलब्धि परीक्षणों का निर्माण कर रहे है।

शोध कार्य की भूमिका शैक्षिक उपलब्धि का संबंध सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि के साथ देखना है जिसमें छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारकों के साथ सह संबंध की सार्थकता की जाँच शोध उद्देश्य के आधार पर किया जाना है। जिनसे छात्रों की कौशल क्षमता तथा विद्यालय से प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन किया जा सके।

1.6 शोध के उद्देश्य

प्रस्तुत शोध हेतु निम्नलिखित उद्देश्य बनाये गये है। जिससे शोध में प्रयुक्त चरों को प्रत्येक की औसत ज्ञात करके देखा जिससे सभी चरों के मध्य संबंध एवं अंतर को ज्ञात किया जा सकता है। इससे विशेष जानकारी प्राप्त करने में जानकारी मिलती है।

1. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश का अध्ययन करना।
2. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का संवेगात्मक बुद्धि का अध्ययन करना।
3. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन करना।
4. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि के मध्य संबंधों का अध्ययन करना।
5. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंधों का अध्ययन करना।

6. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य संबंधों का अध्ययन करना।

7. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश, संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य सार्थक अंतर का अध्ययन करना।

1.7 शोध की परिकल्पना

प्रस्तुत शोध हेतु शून्य परिकल्पना का निर्माण किया गया है । क्योंकि शोध में प्रयुक्त चर सामाजिक परिवेश, संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के संबंधों में कोई सही दिशा प्राप्त न होने के कारण शोधार्थी ने अपने अनुभव एवं ज्ञान के अनुसार शून्य परिकल्पना का निर्माण किया गया है। जो निम्नलिखित है:-

1. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं है।

2. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं है।

3. कक्षा 9वीं के विद्यार्थियों का संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के मध्य कोई सार्थक संबंध नहीं है।

1.7.1 शोध की उप परिकल्पना

1. छात्र-छात्राओं का सामाजिक परिवेश मे सार्थक अंतर नहीं है।

2. छात्र-छात्राओं का संवेगात्मक बुद्धि मे सार्थक अंतर नहीं है।

3. छात्र-छात्राओं का शैक्षिक उपलब्धि मे सार्थक अंतर नहीं है।

4. शासकीय-अशासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश मे सार्थक अंतर नहीं है।

5. शासकीय–अशासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों का संवेगात्मक बुद्धि मे सार्थक अंतर नहीं है।

6. शासकीय–अशासकीय विद्यालय के विद्यार्थियों शैक्षिक उपलब्धि मे सार्थक अंतर नहीं है।

1.8 शोध की सीमाएँ

शोध के लिये किया गया कार्य की सीमा शोधार्थी के लिये अत्यंत आवश्यक मानी जाती है, क्योंकि शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले चर सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि तथा अनेकों मनोवैज्ञानिक कारक होते है, परन्तु इस शोध हेतु सामाजिक परिवेश एवं संवेगात्मक बुद्धि के साथ शैक्षिक उपलब्धि के संबंधों तथा अन्तर का अध्ययन करने के लिये लिया गया है। अन्य कारक जो शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करते है। उन्हें हमने इस शोध कार्य में शामिल नहीं किया गया इसलिए इस शोध की मुख्य सीमाओं का निर्धारण केवल निम्न आधार पर किया गया है।

1. प्रस्तुत शोध कार्य म.प्र. के भोपाल के शहरी क्षेत्र तक सीमित है।
2. प्रस्तुत शोध कार्य में विद्यार्थियों की आयु 14 से 18 वर्ष के बीच है।
3. प्रस्तुत शोध कार्य में 9वीं कक्षा के विद्यार्थियों को ही सम्मिलित किया गया है।
4. प्रस्तुत शोध कार्य शासकीय एवं अशासकीय विद्यालयों में किया गया है।
5. प्रस्तुत शोध कार्य में सी.बी.एस.ई. विद्यालय एवं एम.पी.बोर्ड विद्यालय के विद्यार्थियों का चयन किया गया है।
6. प्रस्तुत शोध कार्य में विद्यार्थियों का सामाजिक परिवेश, संवेगात्मक बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के साथ पारस्परिक संबंधो और अन्तरो का अध्ययन किया गया है।
7. प्रस्तुत शोध कार्य में कुल 99 छात्रों को शामिल किया गया है।